रीतिबद्ध काव्यधारा और प्रतिनिधि कवि

डॉ सरिता, सहायक प्राध्यापक

श्याम लाल कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय

रीतिकाव्य परम्परा में आचार्य केशव का प्रमुख स्थान है, ये न केवल आचार्यत्व बल्कि अपने कवित्व के माध्यम से रीतिकाल में एक विशेष स्थान रखते हैं । केशव के पश्चाततो विभिन्न काव्यागों के आधार पर काव्य रचना करने वाले कवि आचार्यों की संख्या में वृद्धि होती चली गयी । आचार्यत्व परम्परा का निर्वाह करने वाले इन कवि- शिक्षकों के काव्य का केंद्रीय भाव श्रृंगार रस था । अपने इसी कवि शिक्षक रूप को आजिविका ग्रहण करने का माध्यम बनाकर ये आश्रयदाताओं के मनोनुरूप काव्य रचना करने लगे । पाण्डित्य प्रदर्शन कर काव्य की चमत्कारिक शैली में आश्रयदाताओं को प्रभावित करना ही इनकेजीवन और काव्य का उद्देश्य रह गया ।

रीति एवं रीतिकाव्य

'रीति' शब्द का अर्थ है- परिपाटी , मार्ग, प्रणाली, पद्धति आदि । रीति शब्द 'रीड्०' धातु में 'क्तिन'प्रत्यय के योग से बना है। रीति का सर्वप्रथम प्रयोग आचार्य वामन ने किया। आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा माना। आचार्य वामन के अनुसार रीति का अर्थ है- विशिष्ट पद रचना अर्थात विशिष्ट पदों की रचना रीति कहलाती है और काव्य में यह विशिष्टता गुणों के कारण आती है। कहने का तात्पर्य है कि काव्य- सृजन की शैली विशिष्ट का नाम रीति है।

हिंदी साहित्य में 'रीति' का प्रयोग एक विशेष प्रकार की चमत्कारिक रचना के रूप में हुआ है। प्रत्येक कवि की अपनी अपनी अभिव्यंजना शैली होती है। इस अभिव्यंजना शैली में जितनी अधिक कुशलता, विदग्धता होगी उतनी ही वह अभिव्यक्ति काव्य स्वरूप के अधिक निकट होगी। इस प्रकार कवि का वाक- चातुर्य, अलंकार, वक्रोक्ति, शब्द चयन और गुण सभी रीति में समाहित हो जाते हैं। अतः रीति शब्द का प्रयोग हिंदी साहित्य में एक विशेष काव्य प्रवृति के लिए हुआ है। रचना सम्बंधी नियमों से युक्त इस विशिष्ट काव्य प्रवृति के आधार पर लक्षण ग्रंथों अथवा रीति काव्य की रचना हुई।

रीतिकाल का नामकरण :

इस काल के नामकरण को लेकर विद्वानों में वैमत्य है। मिश्रबंधुओं ने इस काल को अलंकृत काल,पं. रमा शंकर शुक्ल रसाल ने 'कला काल'आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'श्रृगारकाल', डां रामकुमार वर्मा ने'कला काल' तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'रीतिकाल'की संज्ञा दी है। लेकिन सभी नामों में रीतिकाल को सर्वाधिक महत्व मिला है। आचार्य शुक्ल से लेकर बाबू श्यामसुंदर दास , रामकुमार वर्मा ,

हजारीप्रसाद द्विवेदी और नगेंद्र जैसे विद्वानों ने इसे स्वीकार किया है। फिर भी इस काल के सभी नामों की समीक्षा समीचीन होगी।

सर्वप्रथम मिश्रबंधुओं ने अपने ग्रंथ 'मिश्रबंधु विनोद'में विवेच्य समय को 'अलंकृतकाल' कहा । इस सम्बंध में उनका कहना था कि इस युग में कविता को अलंकृत करने की परिपाटी अधिक थी। उनके इस तर्क में विशेषबल नही है क्योंकि इस युग की कविता को केवल अलंकृत मान लेने से काव्य के अन्य अंग रसभाव आदि उपेक्षित रह जाते हैं।

डॉ रमा शंकर शुक्ल रसाल और रामकुमार वर्मा ने इस काल को 'कला काल' कहा है। सम्भवत: ऐसा उन्होंने इसलिए कहा क्योंकि इस समय का कला पक्ष- भाषा, छन्द, अलंकार आदि सभी रूपों में समृद्ध एवं श्रेष्ठ दिखाई पड़ता है । किंतु वास्त्विकता तो यह है कि इस काल का रीतिमुक्त काव्य भाव पक्ष की दृष्टि से भी श्रेष्ठ था। और फिर 'कला काल' नाम के अंतर्गत लक्षण ग्रंथ भी समाविष्ट नहीं हो पाते।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'श्रृंगार काल' नाम से अभिहित किया । उनके अनुसार श्रृंगार उक्त काल की प्रमुख प्रवृति थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी हिंदी साहित्य का इतिहास' में इस नाम का संकेत दिया है- "वास्तव में श्रृंगार और वीर इन्ही दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता श्रृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई श्रृंगार काल कहे तो कह सकता है।" इसमें संदेह नहीं है कि इस युग में अधिकांश रचनाएं श्रृंगारिक ही हैं। परंतु इन श्रंगारिक रचनाओं का प्रेरक तत्व कामवासना नहीं अपितु धन है जो विलासी आश्रदाताओं की रूचि के अनुरूप काव्य रचना करके ही प्राप्त किया जा सकता है था। इस युग में ऐसे कवि भी रहे जो अपने इस कर्म से असंतुष्ट रहे अन्यथा भिखारीदास यह क्यों कहते-

आगे के कवि रीझिहै तो कविताई,न तो

राधिका कन्हाई सुमिरन का बहानौ है।

इस काल को श्रृंगार काल कहने से अव्याप्ति दोष होगा क्योंकि इस दशा में वीर, भक्ति, नीति आदि श्रृंगारेतर रचनाएं इस की परिसीमा में नहीं आ सकेंगी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उत्तरमध्यकाल को 'रीति काल' नाम दिया। उन्हे इस काल के साहित्य में व्यापक रूप से रीतिपद्धति पर लिखने की प्रवृति दृष्टिगोचर हुई। संस्कृत काव्यशास्त्र में वामन ने सर्वप्रथम 'रीति' शब्द का प्रयोग किया। रीति शब्द का अर्थ है- विशिष्ट पद रचना । इस समय के काव्य रचना की एक विशेष प्रणाली थी । पहले वे काव्य रचना की रीति अर्थात लक्षण समझाते थे और उसके बाद लक्षणों के उदाहरण रचतेथे। लक्षणोदाहरण पद्धति पर काव्य रचनाकरने वाले ये कवि रीतिबद्ध कवि कहलाए । रीतिसिद्ध कवियों ने भी अपने लक्ष्य ग्रंथों मेंरीति परम्परा का निर्वाह किया । रीतिमुक्त कवियों की रचनाएं विशिष्ट पद रचना के अंतर्गत आंकी जा सकती हैं। इस प्रकारइस काल के साहित्य में रीति कहीं न कहीं दृष्टिगत होती है।

उत्तर मध्यकाल के सभी नामों में 'रीति काल' सर्वाधिक समीचीन है । इस सम्बंध में डॉ भगीरथ मिश्र का यह कथन उपयुक्त प्रतीत होता है- " कला काल कहने से कवियों कीरसिकता की उपेक्षा होती है, श्रृंगारकल कहने से वीर रस और राजप्रशंसा की। " रीति काल कहने से प्राय: कोई भी महत्वपूर्ण वस्तुगत विशेषता उपेक्षित नहीं होती और प्रमुख प्रवृति सामने आ जाती है । यह युग रीति पद्धति का युग था । यह धारणा वास्तविक रूप से सही है ।

रीतिबद्ध काव्य

हिंदी के रीतिकालीनकाव्य को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है – रीतिबद्ध, रीतिसिद्धऔर रीतिमुक्त । रीतिबद्ध काव्य वह काव्य है जो संस्कृत काव्यशास्त्र में प्रतिपादित काव्यांगों के आधार पर लक्षण ग्रंथों के रूप में लिखा गया अर्थात रस , अलंकार, नायिक-भेद, गुण, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि काव्य सिद्धांतों को ध्यान में रखकर काव्य रचना करने वाले कवि ही रीतिबद्ध कहलाए । रीतिबद्ध काव्य लक्षणयुक्त काव्य था । इसमेलक्षणोदाहरण की प्रवृति प्रमुख थी । चूंकि रीति ग्रंथों की रचना काव्यशास्त्रीय नियमों में बंधकर की गयी, इसलिए इसे शास्त्रीय काव्य की संज्ञा भी दी जाती है । डॉ नगेंद्र ने भी इन ग्रंथों के रचयिताओं को 'रीतिकार' कहा है । इस संदर्भ में यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि कवि कर्म और आचार्य कर्म दो परस्पर विरोधी कार्य हैं । कवि के लिए जहां भाव प्रवण, सरल ह्रदय की आवश्यकता होती है वहीं आचार्य कर्म के लिए प्रौढ़ मस्तिष्क , विवेचन, विश्लेषण की शक्तिकी अपेक्षा हुआ करती है ।वास्तव में आचार्य कर्म तो इन्हे परम्परावश निभाना पड़ा। उस समय ऐसी परम्परा चल पड़ी थी कि कोई भी कवि रीतिशास्त्र के ज्ञान के बिना राजदरबार में सम्मान नहीं पा सकता था । इसी कारण इन कवियों ने राजदरबारों में आश्रय ग्रहण किया और जीवनयापन हेतु धन प्राप्त करने के लिए लक्षण-लक्ष्य ग्रंथों का निर्माण किया । इस क्षेत्र में इनका योगदान इस रूप में है कि इन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में वर्णित काव्यांगों को लोक भाषा (ब्रज) में सरल रूप में प्रस्तुत किया। रीतिबद्ध आचार्य कवियों ने किसी नए काव्यशास्त्रीय सिद्धांत की स्थापना नहीं की । इसी कारण इनके लक्षण ग्रंथों में मौलिकता का अभाव है । ये एक अनुवादक के रूप में सामने आए हैं। रीतिबद्ध कवि आचार्यों में केशवदास , चिंतामणि, मतिराम, देव,पदमाकर आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि ये कवि दरबार में मात्र सम्मान और धन पाने हेतु ही रचना करते थे । बल्कि ये रचनाकार कवि ह्रदय भी रखते थे, परंतु समय की मांग के अनुसार एक बंधी बंधाई लीक पर इन्हे काव्य रचना करनी पड़ी,रीतिकालीन कवि और कलाकार सामाजिक चेतना से शून्य नहीं थे, किंतु विवश थे । आचार्य शुक्ल का " काव्य धारा बंधी हुई नालियों में प्रवाहित होने लगी " कथन उनकी काव्य रचना की इसी विवशता को प्रकट करता है । डॉ नगेंद्र भी रीतिकवियों की काव्य-सृष्टि के विषय में लिखते हैं–' रीतिकाल के कवि वे व्यक्ति थे जिनको प्राय: साहित्यिक अभिरूचि पैतृक परम्परा के रूप में प्राप्त थी – काव्य परिशीलन और सृजन इनका शगल नहीं था, स्थायी कर्तव्य कर्म था ।' ये कवि कविता को ललित कला के पर्याय रूप में ग्रहण कर काव्य रचना करते थे ।राजाओं का आश्रय तो ये कवि केवल आर्थिक सहायता के लिए ग्रहणकरते थे जिससे इनकी काव्य- साधना बिना किसी बाधाके निरंतर चलती रहे ।

श्रृंगारिकता रीतिकालीन रीतिबद्ध कविता का प्राण है । श्रृंगार का वर्णन करने में रीतिकाल के कवि निपुण थे । भक्तिकाल की राधा कृष्ण विषयक श्रृंगारी कविता से प्रेरणा पाकर राधा कृष्ण के अलौकिक प्रेम को घोर श्रृंगार में परिणित करना उन्हे अधिक अनुकूल जान पड़ा । यह एक एतिहासिक अनिवार्यता थी , भक्तिकालीन कविता के वर्ण्य विषय में उपरोक्त परिवर्तनकरके ही वे अपने दायित्वका निर्वाह कर सकते थे। परिणामस्वरूप रीतिकालीन जीवन दर्शनएक सीमित घेरे में बंध गया । जब रीतिकवि इस घेरे से जाकर भक्तिपरक व नीतिपरक काव्य रचना करता है तो ऐसा लगता है मानों वह उस दम घुटने वाले वातावरण से बाहर आकर खुली हवा में स्वछंद रूप से विचरण करना चाहता है , काव्य रचना करना चाहता है अन्यथा असंतुष्टि का भाव प्रदर्शित करने वाली पंक्तियां 'न तो राधिका कन्हाई सुमरिन को बहानो है' भिखारीदास क्यों कहते ?

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भी रीतिकवियों द्वारा श्रृंगारिक कविता रचने को समय की मांग और परिस्थितिवश मानते हुए कहते हैं- " हिंदी के मध्ययुगीन कवियों ने अपनी रचनाएं समय के अनुकूल,परिस्थितिवश और अपने साहित्य की मानरक्षा के विचार से की थी। उनका मुक्तक कला प्रधान और संगीत प्रमुख होना अनिवार्य था। उन्होंने जो अनेक प्रकार की उद्भावनाएं की हैं उसके लिए वे समय की गति से विवश थे।"

इस प्रकार रीतिबद्ध काव्य जिस रूप में लिखा गया वह कवियों की अपनी मनोवृति नहीं अपितु आश्रदाताओं की भोगपरक वृति का परिणाम है। यही कारण है कि ये कवि प्रेम के उच्चत्तर सोपानों की और नहीं जा सके। प्रेम की अनन्यता, एक निष्ठा, त्याग आदि उदात्त पक्ष इनके काव्य से नदारद हैं।

रीतिकालीन कवियोंके काव्य में मुक्तक शैली की प्रधानता थी। मुक्तकों के माध्यम से रीतिबद्ध कवियों ने अपने आश्रयदाताओं का खूब मनोरंजन किया। दरबारी वातावरण में चमत्कार पूर्ण कविता रचना के लिए उन्हे मुक्तक शैली अधिक उपयुक्त लगी। कथा प्रबन्धों के लिए यह समय उचित नहीं था और वैसे भी जहाँ दरबार में कवियों में एक दूसरे से बाजी मारने की होड़ लगी रहती हो वहाँ प्रबंध निर्माण का प्रश्न ही नहीं उठता। हिंदी साहित्य के इतिहास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी मुक्तक काव्य की विशेषता पर बल देते हुए लिखा है कि " मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और ह्रदयमें एक स्थाई प्रभाव ग्रहणकरता है। उसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिससे ह्रदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती हैं। यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।" इसी से वह सभा, समाजों के लिए अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

तत्कालीन परिवेश में राजाओं को खुश करने और वाह-वाही लूटने में मुक्तक सहायक था। राजाओं के पास लम्बी कथात्मक कविताएं सुनने का समय ही कहाँ था। वे तो काम भावना के निमित्त ही श्रृंगारिक मुक्तक कविताएं सुनते थे।

रीतिकालीन श्रृंगारिक कविता में अलंकरण की प्रवृति मिलती है। मिश्रबंधुओं द्वारा इस काल को 'अलंकृत काल' कहने के पीछे सबसे बड़ा मुख्य कारण अलंकारों का बहुतायत प्रयोग है। कविता का प्रमुख विषय चूंकि श्रृंगार था इसलिए उसकी रूपाकार की सुंदरता भी अनिवार्य थी। दूसरे, आश्रयदाताओं को चमत्कृत करने के कारण भी इस काल में अलंकरण का बाहुल्य था। यही कारण है कि रीतिबद्ध कवियों ने अपने काव्य में अलंकारों और प्रतीकों का अधिकाधिक प्रयोग किया है। अलंकरण ग्रंथोंमें केशव की 'कविप्रिया', जसवंत सिंह का 'भाषा भूषण', मतिराम का 'ललितललाम', भूषण का 'शिवराज भूषण' पद्माकरण का'पद्माभरण' प्रसिद्ध है। आचार्यत्व का दावा करने वाले ये कवि अलंकार शास्त्रके ज्ञान के बिना पाण्डित्य प्रदर्शन में असमर्थ थे, यही कारण है कि आलंकारिकता इस युग में खूब फली-फूली। यहाँ तक कि अलंकार साधन से साध्य बन गये और कविता की शोभा बढ़ाने वाले सौंदर्य विधायक हो गए। फलस्वरूप काव्य का आंतरिक पक्ष/ अनुभूति पक्ष कमजोर पड़ गया। अलंकार बोझिल रचनाएं चमत्कार पैदाकरने का साधन भर रह गई ।

रीतिबद्ध काव्य में श्रृंगारेतर वीर , भक्ति आदि प्रवृतियाँ भी दृष्टिगत होती हैं। इस काल में औरंगजेब के क्रूर और आतंकी शासन से मुक्तिके लिए आश्रदाताओं को प्रेरित करनेके लिए वीर रचनाओं का प्रणयनभी हुआ। शिवाजी छत्रसाल आदि वीर योद्धा स्वधर्म , देश की रक्षा के लिए औरंगजेब के विरूद्ध खड़े हुए। भूषण ने उन्हे काव्य नायक बनाकर उनकी वीरता, पराक्रम और ओजस्वी स्वर को वाणी दी –

इंद्र जिमि जम्भ पर वाड़व सुअंभ पर

रावन सदंभ पर रघुकुल राज है,

×× × ×

तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर

त्यों मलेच्छ वंस पर सेर शिवराज है।

केशव की 'रतनबावनी''वीर चरित्र','जहाँगीर जस चन्द्रिका', भूषण के 'शिवराज भूषण', शिवाबावनी', छत्रशाल दशक', पद्माकर की 'हिम्मतबहादुर विरूदावली' आदि वीर काव्यों में आश्रयदाता की प्रशस्ति के ऐसे ही वर्णन देखने को मिलते हैं।

रीतिग्रंथों के मंगलाचरण और ग्रंथों की समाप्ति पर लिखे गये आशीर्वचनों में भक्ति की प्रवृति भी मिलती है तो विलासमय दरबारी जीवन के दुखों से व्यथित मन के लिये नीति भी शांति का आधार बनी। इसलिए उपदेशक और अन्योक्तिपरक छन्दों में उनके स्वयं के अनुभवों की छाप मिलती है।

शिल्प की दृष्टि से यदि रीतिबद्ध काव्य का विश्लेषण किया जाये तो यह हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान रखता है। रीतिबद्ध काव्य अपनी शैली, भाषा, अलंकार आदि के आधार पर हिंदी साहित्यमें विशुद्ध कला का परिचायक है। इस युग में एक विशिष्ट कलात्मक दृष्टि का विकास हुआ। ब्रज इस युग की प्रमुख साहित्यिक भाषा थी जो मधुर एवं कोमल भावों की अभिव्यक्ति में पूर्ण सक्षम थी। डॉ नगेंद्र ने इस काल के कवि की भाषा के सम्बंध में लिखा है- " भाषाके

प्रयोग में इन कवियों ने एक नाजुक मिजाजी बरती है इनके काव्य में किसी भी ऐसे शब्द की गुंजाइश नहीं जिसमें माधुर्य नहीं है, अक्षरों के गुंफन में इन्होंने कभी भी त्रुटी नहीं की। संगीत के रेशमी तारों में इनके शब्द माणिक्य मोती की तरह गुंथे हुए हैं ऐसी रंगोज्जवल शब्दावली अन्यत्र दुर्लभ है।" रीति के संकीर्ण दायरे में रहकर काव्यरचना करते हुए इस काल के कवियों ने अपनी भावानुभूति , रसात्मकता, कला कौशल, भाषागत आदि का सुंदर परिचय दिया है।

प्रमुख रीतिबद्ध कवि

रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवियों में – केशव, चिंतामणि, मतिराम, भूषण, देव और पद्माकर आदि का नाम आता है।

केशवदास :

केशवदास रीतिकाल के प्रसिद्ध आचार्य हैं। इनका जन्म संवत १६१२ में ओरछा के एक धनाढ़य परिवार में हुआ। इनके पिता काशीनाथ मिश्र संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान थे। इसी कारण इनकी सम्पूर्ण शिक्षा-दीक्षा संस्कृत भाषा में हुई। ये राजा इंद्रजीत के दरबारी कवि थे। केशवदास की प्रमुख रचनाओं में 'कविप्रिया''रसिकप्रिया''रामचंद्रिका''वीरदेवसिंह चरित''जहाँगीर जस चंद्रिका' उल्लेखनीय हैं। 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' क्रमश: रस एवं अलंकार सम्बंधी लक्षण ग्रंथ हैं जबकि 'रामचंद्रिका' एक प्रबंधकाव्य है जिसमें श्रीराम के जीवनका वर्णन हुआ है । भाषा शैली की दृष्टि से यह एक शिथिल काव्य रचना है, परंतु इसके संवाद सुगठित एवं प्रभावशाली हैं, जो स्वाभाविक, सजीव एवं नाटकीय बन पड़े हैं। आवश्यकता से अधिक अलंकार और चमत्कारिक शैली के कारण इनका काव्य क्लिष्ट एवं दुरूह हो गया है, इसी कारण इन्हे 'कठिन काव्य का प्रेत' भी कहा जाता है। केशव के कवि रूप से अधिक प्रखर इनका आचार्य रूप है। इसलिए कुछ विद्वानों ने इन्हे रीतिकाल का प्रवर्तक आचार्य माना है। इन्होंने रस,अलंकार और छन्दों को लक्षणबद्ध किया है, अलंकारों को तो ये काव्य की आत्मा मानते हैं।

चिंतामणि :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ नगेंद्र, भगीरथ मिश्र आदि विद्वानों ने चिंतामणिको रीतिकाल का प्रवर्तक माना हैक्योंकि, उनके अनुसार आचार्य चिंतामणी के पश्चात रीतिग्रंथों की परम्परा प्रारम्भ हुई। इनका जन्म संवत १६६६ के लगभग हुआ। चिंतामणि की प्रमुख रचनाएं हैं- 'काव्यविवेक','काव्यप्रकाश','कविकुल-कल्पतरू','रसमंजरी', श्रृंगारमंजरी','पिंगल' और 'रामायण'। काव्यशास्त्रीय विवेचन पर आधारित 'कविकुल-कल्पतरू' में रीति, रस, नायिका भेद आदि का विस्तृत वर्णन इस रचना का वर्ण्य-विषय है। इन्होंने ब्रजभाषा में ही अपने ग्रंथों की रचना की। आचार्यत्व के साथ कवि कर्म का बखूबी निर्वाह भी इनकी रचनाओं में मिलता है। श्रृंगार, वीर, वात्सल्य. आदि रसों का सुंदर वर्णन भी इनकी रचनाओं में हुआहै। आचार्य केशव के बाद यही प्रमुख रीति आचार्य हैं। छंद-विधान कीदृष्टि इन्होंने कवित्त और सवैयों का प्रयोग किया है और काव्यांगों के लक्षण मुख्यत: दोहा छंद में दिए हैं।

मतिराम :

श्रृंगार रसनिरूपक कविओं में मतिराम का स्थान महत्वपूर्ण है। उन्होंने श्रृंगार रस को ही रसराज मानकर उसका विशद विवेचन किया है। इनका जन्म उत्तरप्रदेश के जिला फतेहपुर के बनपुर नामक स्थान पर १६०४ ई. में हुआ। इनके पिता का नाम विश्वनाथ त्रिपाठी था। मतिराम ने आठ ग्रंथों की रचना की – 'रसराज','ललितललाम','फूलमंजरी','लक्षण श्रृंगार', साहित्यसार','अलंकार पंचाशिका','वृत कौमुदी' तथा 'मतिराम सतसई'।

'रसराज' में दोहा, कवित्त और सवैया छंदों में श्रृंगार रस का सांगोपांगविवेचन किया गया है। मतिराम के इस ग्रंथ पर भानुदत्त की 'रसमंजरी','रसतरंगिणी', रहीम का 'बरवै नायिका भेद' और विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। रसराज में इन्होंने श्रृंगार को ही वर्ण्य-विषय बनाया है तथापि अन्य रचनाओं में मतिराम के राजप्रशस्तिपरक छंदों को देखा जा सकता है। कवित्व की दृष्टि से भी इनकी रचनाएं सरस एवं मनोरम हैं। भाषा सहज सरल है जिसमें माधुर्य गुण की प्रधानता है । कल्पना के माध्यम से बिम्बों का सजीव व आकर्षक रूप काव्य रचना के कौशल का परिचायक है।

भूषण :

रीतिबद्ध कवियों में भूषण का स्थान महत्वपूर्ण है। भूषण ने रीतिकालीन श्रृंगारिकता की सीमा से बाहर निकल वीर रस से युक्त रचनाओं का प्रणयन किया। रीतिकाल में भूषण ऐसे कवि हैं जिन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों में हिंदू राष्ट्रीयता के भाव की रक्षाकरते हुए वीरों के ह्रदय में ओज का स्वर फूँका। भूषण जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण त्रिपाठी थेजो कानपुर के तिकवांपुर के रहने वाले थे, इनके पिता का नाम रत्नाकर था। भूषण के जन्म को लेकर विद्वानों में मतभेद है । शिवसेंगर इनका जन्म १७३८ वि० मानते हैं तो 'मिश्रबंधु विनोद' में सं० १६७२ वि० मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनका जन्म सं० १६७० माना है और चित्रकूट के सोलंकी राजा रूद्र द्वारा इन्हे 'कवि भूषण' की उपाधि देने कीबात स्वीकारी स्वीकारी है। भूषण के आश्रयदाताओं में शिवाजी और छत्रशाल का नाम उल्लेखनीय है।

भूषण की रचनाओं में- 'शिवा बावनी','शिवराज भूषण','छत्रशाल दशक','भूषण उल्लास' आदि प्रमुख हैं। 'शिवा बावनी' में औरंगजेब के अत्याचारों और क्रूरता का चित्रण तथा शिवाजी की प्रशस्ति मिलती है। 'शिवराज भूषण' एक लक्षण ग्रंथ है। इसमें अलंकारों का विशद विवेचन हुआ है तथा उदाहरण स्वरूप लिखे गए छन्दों में वीर रस का हीपरिपाक देखने कोमिलता है। 'छत्रशाल दशक' में चम्पतराय के पुत्र छत्रसाल की प्रशंसामें लिखे गए १०० पद मिलते हैं। इन पदों में छत्रशाल की वीरता पराक्रम आदि का वर्णन बड़ी सजीवता के साथ किया है।

देव :

रीतिकालीन रीतिबद्ध कवियों में देव का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। इनका पूरा नाम देवदत्तथा। 'देव' इनका उपनाम था। इनका जन्म इटावा में एक चौरसीया (कान्यकुब्ज) ब्राह्मण परिवार में हुआ। इन्होंने मात्र सोलह वर्ष की उम्र में 'भाव विलास' नामक ग्रंथकी रचना कर अपनी कुशाग्र बुद्धी का परिचय दिया। आचार्य देव ने लक्षण लक्ष्य

दोनों प्रकार की रचनाएं की। आचार्य रामचंद्र शुक्लने इनकी रचनाओं की संख्या ७२ बताई है। देव रचित प्रमुख रचनाओं में 'भावविलास','भवानी विलास','रस विलास','देव चरित','काव्य रसायन','अष्टयाम' आदि हैं। रीतिनिरूपण एवं रीति की व्याख्या देव ने अपनी प्रारम्भिक कृति 'भाव विलास' में की है तो 'शब्द रसायन' में काव्यशात्र के प्राय: सभी अंगों / उपांगों का चित्रण मिलता है। रसों में ये रसराज श्रृंगार को ही अधिक महत्व देते हैं। इन्होंने'तात्पर्यवृति नामक चतुर्थ शब्द शक्ति को भी स्वीकार कर इसे महत्वदिया हैं।

देव के आचार्यत्व की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें पाण्डित्य की अपेक्षा स्पष्टता एवं सरलता है। कवित्व में विश्लेषण क्षमता और अनुभव विस्तार इनके काव्य कौशल का परिचायक है। देव की भाषा में पद-मैत्री, यमक, अनुप्रास, तथा श्लेष का सुंदर चमत्कार मिलता है। निसंदेह उनका काव्यत्व और आचार्यत्व उच्च कोटि का है।

पद्माकर :

रीतिकालीन कवियों में पद्माकरका नाम विशेष है। ये एक तैलंग ब्राह्मण थे। इनकाजन्म १७५३ ई० में मध्यप्रदेश में हुआ। इनके पिता का नाम मोहन लाल भट्ट था। ये अनेक राजाओं के दरबार में सम्मानपूर्वक रहे। इनके सात ग्रंथ मिलते हैं –'हिम्मतबहादुर विरूदावली','पद्माभरण','जगद्विनोद','प्रबोध-पचासा','गंगा लहरी','प्रताप विरूदावली' और कलि पच्चीसी'। 'जगद्विनोद' इनकाप्रसिद्ध गंथ है जिसमें रस के अंगों-उपांगों का वर्णन विस्तारपूर्वकमिलता है। जयपुर नरेश महराजा प्रताप सिंह ने इन्हे 'कविराज शिरोमणि' की उपाधि देकर धन से सम्मानित किया। 'पद्माभरण' एक अलंकार ग्रंथ है। पद्माकर ने अपने ग्रंथों के लक्षण मुख्यत: दोहो में और उदाहरण कवित्त सवैयों में लिखे हैं। इनके लक्षण सरल, सुबोध एवं स्पष्ट हैं। श्रृंगार और भक्ति के साथ-साथ राजप्रशस्ति को भी इन्होंने अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया है। पद्माकर की भाषा सरल बोलचाल की भाषा है, जिसमें बिम्बों का सजीव चित्रण मिलता है।